

गायत्री मंत्र के प्र अक्षर की व्याख्या

उदारता और दूरदर्शिता



● श्रीराम शर्मा आचार्य

उदारता और दूरदर्शिता

गायत्री मंत्र का इक्कीसवीं अक्षर 'प्र' मनुष्य को उदारता और दूरदर्शिता के गुणों को प्राप्त करने की शिक्षा देता है ।

प्रकृतेस्तु भवोदारो जानुदारः कदाचन ।

चिन्तयोदार द्रष्टृचैव तेन चित्तं विशुद्ध्यति ॥

अर्थात्—“अपने स्वभाव को उदार रखो, अनुदार मत बनो । दूरदृष्टि से विचार करो । ऐसा करने से चित्त पवित्र होता है ।”

अपनी रुचि, इच्छा, मान्यता को ही दूसरे पर लादना, अपने गज से सबको नापना, अपनी ही बात को, अपने ही स्वार्थ को सदा ध्यान में रखना अनुदारता का चिह्न है । अनुदारता पशुता का प्रतीक है । दूसरों के विचारों, तर्कों, स्वार्थों और उनकी परिस्थितियों को समझने के लिए उदारतापूर्वक प्रयत्न किया जाय तो अनेकों झगड़े सहज ही शान्त हो सकते हैं । उदारता में दूसरों को अपना बनाने का अद्भुत गुण है ।

जितने अंशों में दूसरों से एकता हो, सर्व प्रथम उस एकता को प्रेम और सहयोग का माध्यम बनाया जाय । मतभेद के प्रश्नों को पीछे के लिए रखा जाय और मन की शान्त अवस्था में उनको धीरे-धीरे सुलझाया जाय । सामाजिकता का यही नियम है । जिद्दी, दुराग्रही, घमण्डी, संकीर्ण भावना वाले मनुष्य गुत्थियों को सुलझा कर दूसरों का सहयोग पाने से प्रायः वंचित रहते हैं ।

आज का, इसी समय का, तुरन्त का लाभ देखना और भविष्य के दूरवर्ती परिणामों पर विचार न करना अदूरदर्शिता है । उसी के चंगुल में फँस कर मनुष्य अपना स्वास्थ्य, यश, विवेक तथा स्थायी लाभ खो बैठता है । आज के क्षणिक लाभ पर भविष्य के चिरस्थायी लाभ को नैवा देने वाले मूर्ख मनुष्य ही बीमारी, अकाल मृत्यु, कंगाली, बदनामी, घृणा एवं अधोगति के भागी बनते हैं । किसान, विद्यार्थी, ब्रह्मचारी, व्यापारी, वैद्य, नेता, तपस्वी आदि सभी बुद्धिमान आज की थोड़ी असुविधाओं का ध्यान न करके भविष्य के महान लाभों का ध्यान रखते हैं और थोड़ा-सा त्याग करके बहुत लाभ प्राप्त करने की नीति को अपनते हैं । भविष्य का ध्यान रखने वाला मनुष्य ही वर्तमान समय और साधनों का ठीक

उपयोग कर सकता है । लक्ष्य को स्थिर करके उस तक पहुँचने का निरन्तर प्रयत्न करना ही सफलता का मार्ग है ।

उदारता एक महान गुण है

मनुष्य जीवन को सफल और उन्नत बनाने वाले अनेकों गुण होते हैं—जैसे सचाई, न्यायप्रियता, धैर्य, दृढ़ता, साहस, दया, क्षमा, परोपकार आदि । इनमें से कुछ गुण तो ऐसे होते हैं जिनसे वह व्यक्ति स्वयं ही लाभ उठाता है और कुछ ऐसे भी होते हैं जिनके द्वारा अन्य लोगों का उपकार भी होता है और अपनी भी आत्मोन्नति होती है । उदारता एक ऐसा ही महान गुण है ।

मनुष्य के व्यक्तित्व को आकर्षक बनाने वाली यदि कोई वस्तु है, तो वह उदारता है । उदारता प्रेम का परिष्कृत रूप है । प्रेम में कभी-कभी स्वार्थ भावना छिपी रहती है । कामातुर मनुष्य अपनी प्रेयसी से प्रेम करता है, पर जब उसकी प्रेम-वासना की तृप्ति हो जाती है, तो वह उसे भुला देता है । जिस स्त्री से कामी पुरुष अपने यौवन-काल और आरोग्य अवस्था में प्रेम करता है, उसी को वृद्धावस्था में अथवा रुग्णावस्था में तिरस्कार की दृष्टि से देखने लगता है । पिता का पुत्र के प्रति प्रेम, मित्र का मित्र के प्रति प्रेम तथा देश भक्त का अपने देशवासियों के प्रति प्रेम में स्वार्थ भाव भी रहता है । जब पिता का पुत्र से, भाई का भाई से, मित्र का मित्र से, देश भक्त का देशवासियों से किसी प्रकार का स्वार्थभाव नहीं होता, तो वे अपने प्रिय जनों से उदासीन हो जाते हैं, पर जिस प्रेम का आधार उदारता होती है, वह इस प्रकार नष्ट नहीं होता । उदार मनुष्य दूसरे से प्रेम अपने स्वार्थ-साधन हेतु नहीं करता, वरन् उनके कल्याण और अपने स्वभाव के कारण करता है । इससे उदारतायुक्त प्रेम सेवा का रूप धारण कर लेता है । इस प्रकार का प्रेम दैवी रूप में प्रकाशित होता है ।

उदार मनुष्य दूसरे के दुःख से दुःखी होता है । उसे अपने सुख-दुःख की उतनी चिन्ता नहीं रहती, जितनी दूसरे के सुख-दुःख की रहती है । भगवान् बुद्ध अपने दुःख की निवृत्ति के हेतु संसार को त्याग जंगल में नहीं गये थे, वरन् संसार के सभी प्राणियों को दुःखों से मुक्त करने के विचार से राज-प्रासाद त्याग कर वनवासी बने थे । ऐसे व्यक्ति ही नर-श्रेष्ठ कहे जाते हैं ।

२)

(उदारता और दूरदर्शिता

उदारता से मनुष्य की मानसिक शक्तियों का अद्भुत विकास होता है । जो व्यक्ति अपने कमाये धन का जितना अधिक दान करता है, वह अपने अन्दर और धन कमा सकने का उतना ही अधिक आत्म-विश्वास उत्पन्न कर लेता है । सच्चे उदार व्यक्ति को अपनी उदारता के लिए कभी अफसोस नहीं करना पड़ता । उदार व्यक्ति की आत्म-भर्त्सना नहीं होती । सेवा-भाव से किया गया कोई भी कार्य मानसिक दृढ़ता ले आता है । इसके कारण सभी प्रकार के वितर्क मन में उथल-पुथल पैदा न करके शान्त हो जाते हैं । अनुदार व्यक्ति अनेक प्रकार का आगा-पीछा सोचता है, उदार व्यक्ति इस प्रकार की बात नहीं सोचता । भलाई का परिणाम भला ही होता है, चाहे वह किसी व्यक्ति के प्रति क्यों न की जाय ? इससे एक ओर भले विचारों का संचार उदारता के पात्र के मन में होता है और दूसरी ओर अपने विचार भी भले बनते हैं ।

प्रकृति का यह अटल नियम है कि कोई भी त्याग व्यर्थ नहीं जाता । जानबूझकर किया गया त्याग सूक्ष्म आध्यात्मिक शक्ति के रूप में अपने ही मन में संचित हो जाता है, वह शक्ति एक प्रामेसरी नोट के समान है, जिसे कभी भी भुनाया जा सकता है । सभी लोगों को भविष्य का सदा भय लगा रहता है, वे इस चिन्ता में डूबे रहते हैं कि जब वे कुछ काम न कर सकेंगे तो अपने बाल-बच्चों को क्या खिलायेंगे अथवा अपनी आजीविका किस प्रकार चलायेंगे ? कितने ही लोगों को अपनी शान बनाये रखने की चिन्ताएँ सताती रहती हैं । पर उदार व्यक्ति को इस प्रकार की कोई भी चिन्ता नहीं सताती । जब वह गरीब भी रहता है, तब भी सुखी रहता है । उसे भावी कष्टों का भय रहता ही नहीं । संसार के अनुदार व्यक्ति जितने काल्पनिक दुःखों से दुःखी रहते हैं, उतने वास्तविक दुःखों से दुःखी नहीं होते । उदार पुरुष के मन में वे सब अशुभ विचार नहीं आते, जो सामान्य लोगों को सदा पीड़ित किया करते हैं ।

यदि कोई मनुष्य अपने आप गरीबी का अनुभव करता है, तो इसकी चिन्ता से मुक्त होने का उपाय धन संचय करना समझा जाता है । धन संचय के प्रयत्न से धन का संचय तो हो जाता है, पर मनुष्य धन की चिन्ता से मुक्त नहीं होता । वह धनवान होकर भी निर्धन बना रहता है । जब धन संचित हो जाता है तो उसके मन में अनेक प्रकार के उदारता और दूरदर्शिता)

अकारण भय होने लगते हैं । उसे भय हो जाता है कि कहीं उसके सम्बन्धी मित्र, पड़ोसी आदि ही उसके धन को हड़प न लें और उसके बाल-बच्चे उसके मरने के बाद भूखों न मरें । वह अपने अनेक कल्पित शत्रु उत्पन्न कर लेता है, जिनसे रक्षा के वह अनेक प्रकार से उपाय सोचता रहता है । धन संचय में अधिक लगन हो जाने पर उसके स्वास्थ्य का विनाश हो जाता है । उसकी सन्तान की शिक्षा भली प्रकार से नहीं होती और वह निकम्मी और चरित्रहीन हो जाती है । इस प्रकार उसका धन संचय का प्रयास एक ओर तो उसकी मृत्यु को समीप बुला लेता है और दूसरी ओर धन के विनाश के कारण भी उपस्थित कर देता है । अतएव धन संचय का प्रयत्न अन्त में सफल न होकर विफल ही होता है ।

गरीब व्यक्ति भी उदार हो सकते हैं

जो व्यक्ति गरीबी का अनुभव करता है, उसके लिए अपनी गरीबी की मानसिक स्थिति के विनाश का उपाय अपने से अधिक गरीब लोगों की दशा पर चिन्तन करना और उनके प्रति करुणा भाव का अभ्यास करना ही है । अपने से अधिक गरीब लोगों की धन के द्वारा सेवा करने से अपनी गरीबी का भाव नष्ट हो जाता है । फिर मनुष्य अपने अभाव को न कोसकर अपने आपको भाग्यवान मानने लगता है । उसकी भविष्य की व्यर्थ चिन्ताएँ नष्ट हो जाती हैं । उसमें आत्म-विश्वास बढ़ जाता है । इस आत्म-विश्वास के कारण उसकी मानसिक शक्ति भी बढ़ जाती है । मनुष्य के संकल्प की सफलता उसकी मानसिक शक्ति के ऊपर निर्भर करती है । अतएव जो व्यक्ति उदार विचार रखता है, उसके संकल्प सफल होते हैं । उसका मन प्रसन्न रहता है । वह सभी प्रकार की परिस्थितियों में शान्त रहता है । उसका स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है और वह जिस काम को हाथ में लेता है, उसको पूरा करने में समर्थ होता है । उसकी अकारण मृत्यु भी नहीं होती । दीर्घ जीवी होने के कारण उसकी सन्तान दूसरों की आश्रित नहीं बनती ।

जिस व्यक्ति के विचार उदार होते हैं और जो सदा अपने आपको दूसरों की सेवा में लगाये रहता है, उसके आस-पास के लोगों के विचार भी उदार हो जाते हैं । स्वार्थी मनुष्य की सन्तान निकम्मी ही नहीं बल्कि क्रूर भी होती है । ऐसी सन्तान माता-पिता को ही कष्ट देती है । इसके

प्रतिकूल उदार मनुष्य की सन्तान सदा माता-पिता को प्रसन्न रखने के काम करती है । जब उदारता के विचार मनुष्य के स्वभाव बन जाते हैं अर्थात् वे उसके चेतन मन को ही नहीं वरन् अचेतन मन को भी प्रभावित कर देते हैं, तो वे अपना प्रभाव छोटे बच्चों और दूसरे सम्बन्धियों पर भी डालते हैं । इस प्रकार हम अपने आस-पास उदारता का वातावरण बना लेते हैं और इससे हमारे मन में अद्भुत मानसिक शक्ति का विकास होता है ।

विद्या के विषय में कहा जाता है कि वह जितनी ही अधिक दूसरों को दी जाती है, उतनी ही अधिक बढ़ती है । देने से किसी वस्तु का बढ़ना-यह विद्या के विषय में ही सत्य है । युधिष्ठिर महाराज ने राजसूय यज्ञ में विदाई और दान का भार दुर्योधन को दिया था और कृष्ण ने स्वयं लोगों के स्वागत का भार लिया था । कहा जाता है कि दुर्योधन को यह कार्य इसलिए सौंपा गया था जिससे कि वह मनमाना धन सभी को दे, पर जितना धन वह विदाई से दूसरों को देता था, उससे चौगुना धन तुरन्त युधिष्ठिर के खजाने में आ जाता था । श्रीकृष्ण सभी अतिथियों का स्वागत करते समय उनके चरण पखारते थे । इसके परिणामस्वरूप उन्होंने अपना सम्मान खोया नहीं वरन् और भी बढ़ा लिया । जब राजसभा हुई तो एक शिशुपाल को छोड़ सभी राजाओं ने श्रीकृष्ण को ही सर्वोच्च आसन के लिए प्रस्तावित किया । जो अपने मन को जितना दूसरों के हित में लगाता है, वह उसे उतना ही अधिक पाता है और जो अपने मान-अपमान की परवाह नहीं करता, वही संसार में सबसे अधिक सम्मानित होता है ।

स्वार्थ भाव मन में क्षोभ उत्पन्न करता और उदारता का भाव शील उत्पन्न करता है । यदि हम अपने जीवन की सफलता को आन्तरिक मानसिक अनुभूतियों से मापें तो हम उदार व्यक्ति के जीवन को ही सफल पायेंगे । मनुष्य की स्थायी सम्पत्ति धन, रूप अथवा यश नहीं है, ये सभी नश्वर हैं । उसकी स्थायी संपत्ति उसके विचार ही हैं । जिस व्यक्ति के मन में जितने अधिक शान्ति, सन्तोष और साम्यवाद लाने वाले विचार आते हैं वह उतना ही अधिक धनी है । उदार विचार मनुष्य की वह सम्पत्ति हैं, जो उसके लिए आपत्ति काल में सहायक होती है । अपने उदार विचारों के कारण उसके लिए आपत्तिकाल आपत्ति के रूप में आता उदारता और दूरदर्शिता)

ही नहीं, वह सभी परिस्थितियों को अपने अनुकूल देखने लगता है ।

उदार मनुष्य के मन में भले विचार अपने आप ही उत्पन्न होते हैं । इन भले विचारों के कारण सभी प्रकार की निराशाएँ नष्ट हो जाती हैं और उदार मनुष्य सदा उत्साहपूर्ण रहता है । उदार मनुष्य आशावादी होता है । निराशावाद और अनुदारता का जिस प्रकार सहयोग है, उसी प्रकार उदारता का सहयोग आशावाद और उत्साह से है । जब मनुष्य अपने आप में किसी प्रकार की निराशा की वृद्धि होता देखे तो उसे समझना चाहिए कि कहीं न कहीं उसके विचारों में उदारता की कमी हो गई है, अतएव इसके प्रतिकार स्वरूप उसे उदार विचारों का अभ्यास करना चाहिए । अपने समीप रहने वाले व्यक्तियों से ही इसका प्रारम्भ करे तो वह देखेगा कि थोड़े ही काल में उसके आस-पास दूसरे ही प्रकार का वातावरण उत्पन्न हो गया है । उसके मन में फिर आशावादी विचार आने लगेगे । जैसे-जैसे उसकी उदारता का अभ्यास बढ़ेगा, उसका उत्साह भी उसी प्रकार बढ़ता जायगा । इससे यह प्रमाणित होता है कि मनुष्य उदारता से कुछ खोता नहीं, कुछ न कुछ प्राप्त ही करता है ।

कितने ही लोग कहा करते हैं कि दूसरे लोग हमारी उदारता से लाभ उठाते हैं । वास्तव में वह उदारता, उदारता ही नहीं जिसके पीछे पश्चात्ताप करना पड़े । स्वार्थवश दिखाई गई उदारता के पीछे ही इस प्रकार का पश्चात्ताप होता है । सच्चे हृदय से दिखाई गई उदारता कभी भी पश्चात्ताप का कारण नहीं होती, उसका परिणाम सदा भला ही होता है । यदि कोई व्यक्ति हमारे उदार स्वभाव से लाभ उठाकर हमें ठगता है तो इससे हमारी नहीं उस ठगने वाले की हानि है ।

दूसरों के दोष मत ढूँढ़िए

उदारता केवल रुपये पैसे द्वारा किसी की सहायता करने को ही नहीं कहते वरन् दूसरों के साथ ऐसा सद्व्यवहार करना, जिससे उनका आन्तरिक मन संतुष्ट और सुखी हो, एक बड़ी सराहनीय प्रवृत्ति है । संसार में दोषों की कमी नहीं है और अधिकांश मनुष्यों में गुणों की अपेक्षा दोषों की संख्या ही अधिक देखने में आती है । यदि आप उदार प्रकृति के हैं और ऐसे लोगों के दोषों पर पर्दा डाल कर उनके गुणों को ही प्रोत्साहन देते हैं तो बहुत सम्भव है कि इससे उनका मानसिक सुधार

हो जाय और उसके लिए वे सदैव कृतज्ञ रहें ।

दूसरों के दोष देखने की आदत बुरी है । दोष देखने की आदत पड़ जाने से सामने वाले व्यक्ति के दोष ही दोष दीखते हैं, उसमें अच्छे गुण भी हों पर वे तिल का ताड़ बनाने की इस बुरी आदत के कारण वैसे नहीं दीखते जैसे कि तिनके की आड़ में पहाड़ छुप जाता है । दूसरों के दोष देखना, छिद्रान्वेषण करना महान मानस रोग है । इससे मुक्त होना चाहिए ।

भगवती पार्वती के दो पुत्र थे । एक के छः मुख और बारह आँखें थीं और दूसरे के हाथी जैसी लम्बी नाक थी । पहिला दूसरे की नाक हाथ से नापने लगता और दूसरा पहिले की आँखें गिनने लगता । एक, दो तीन, चार, दस, ग्यारह, बारह बस फिर लड़ाई ठन जाती और वे आपस में खूब लड़ने लगते । माता पार्वती इनकी लड़ाई से परेशान हो गई । बरजती, पर वे न मानते । एक दिन उन्हें पकड़ कर शंकर जी के पास ले गई और बोलीं कि महाराज ! ये लड़के दिन भर लड़ते रहते हैं । इन्हें किसी तरह समझा दीजिए । ज्ञान-निधान शंकर जी उनके लड़ने का कारण समझ गये और उन्होंने उन्हें बड़े प्रेम से पास बैठाकर दूसरों के ऐब देखने की बुराई समझा दी । लड़कों ने लड़ना बन्द कर दिया । इसलिए किसी ने कहा है—

अगर है मञ्जूर तुझको बेह्तरी,
न देख ऐब दूसरों का तू कभी ।
कि बद (दोष) बीनी आदत है शैतान की,
इसी में बुराई की जड़ है छिपी ॥

महात्मा सूरदास का बहुत सुन्दर भजन है—हमारे अवगुण चित न धरी..... । इत्यादि । भगवान से की गई यह प्रार्थना हृदय को चुम्बक जैसे पकड़ लेती है । भगवान हमारे अपराधों को क्षमा करें, हमारे दोषों को न देखें, यह भाव हृदय में आते ही विचार आता है कि अपने अपराधों को क्षमा कराने वालों को दूसरों के अपराधों को स्वयं भी तो क्षमा करना चाहिए । हम जब स्वयं क्षमाशील होंगे तभी हमारे अपराध भी क्षमा हो सकेंगे । दूसरों के दोष देखना भगवान के प्रति कृतघ्न होना है । हम शिकायत करते रहते हैं कि हमारा अमुक संबंधी ऐसा है, वैसा है । हम उदारता और दूरदर्शिता)

(७

अपने उस सम्बन्धी के उन विशेष गुणों का ख्याल ही नहीं करते जो अन्य लोगों में नहीं है, हम बहुधा यह भूल जाते हैं कि हमें जो सम्बन्धी मिला है वह दूसरों के सम्बन्धियों की अपेक्षा अनेक बातों में बहुत अच्छा है और व्यर्थ में ही हम अपने उस सम्बन्धी के कारण अपने भाग्य को कोसते हैं । इसके अतिरिक्त हम इसलिए भी कृतघ्न हैं कि हम अपने सम्बन्धी की की हुई सेवाओं की सराहना नहीं करते । कृतज्ञता का सबक हमें भगवान राम से सीखना चाहिए । महर्षि वाल्मीकि राम के लिए कहते हैं—

न स्मरत्युपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया ।

कथंचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति ॥

वे कौशल्यानन्दन ऐसे हैं कि किसी के द्वारा अपने प्रति किए गए सैकड़ों अपराधों का भी स्मरण नहीं करते किन्तु यदि कोई किसी भी प्रकार उनका कैसा भी उपकार कर दे तो उससे ही उन्हें संतोष हो जाता है । महाकवि राम के इसी गुण के कारण उन्हें बार-बार 'अनुसूय' कह कर स्मरण किया है । 'अनुसूय' अर्थात् असूया-दोष रहित । किसी के गुणों में दोष देखना अथवा किसी के गुणों से जलना ही असूया है । भगवान राम न तो किसी के गुणों में दोष देखते थे और न किसी के गुणों से जलते थे । राम-भक्त को ऐसा ही होना चाहिए । पर-दोष-दर्शन के दोष से मुक्ति पाने के लिए हमें पर-गुण-चिन्तन की आदत डालनी चाहिए और प्रतिपक्षी के गुणों का विचार करना चाहिए ।

संकीर्णता मनोमालिन्य की उत्पादक है

संकीर्णता मानव स्वभाव का बड़ा दोष है । मनुष्य एक सामाजिक जीव है और उसका जीवन तभी सफल माना जा सकता है जब वह दूसरे लोगों को अपना सहयोग और सहायता प्रदान करे, पर जो लोग स्वभाव की संकीर्णता के कारण यह विचार करते हैं कि हम उन्हीं लोगों की सहायता करें जिनसे हमको सहायता मिलती चुकी है या भविष्य में मिलने की आशा है, तो उनसे भलाई की बहुत ही कम सम्भावना रखनी चाहिए । ऐसी सौदा करने की मनोवृत्ति कभी प्रशंसनीय नहीं कही जा सकती और उससे किसी का विशेष लाभ नहीं हो सकता ।

संकीर्ण स्वभाव वाले व्यक्ति प्रायः किसी की प्रशंसा करना या किया जाना भी सहन नहीं करते । वे सदैव अपने लाभ पर दृष्टि रखते

(८)

(उदारता और दूरदर्शिता

हैं और दूसरों को जहाँ तक हो सके सहायता न देना उनका स्वभाव होता है । इतना ही नहीं वे प्रायः दूसरों के दोष भी तलाश किया करते हैं और उनकी आवश्यकता से अधिक कटु आलोचना करते हैं, जिससे वह व्यक्ति दूसरों की निगाहों से गिर जाय ।

दूसरों के दोष देखना कठिन बात नहीं है । सहज ही, छोटी-मोटी भूलों को पकड़ कर किसी की भी आलोचना की जा सकती है । तिल का ताड़ बनाया जा सकता है । शब्दों की भी आवश्यकता नहीं । केवल भू-भ्रंगियों द्वारा नाक सिकोड़ कर अथवा मुँह बिचकाकर आप किसी भी व्यक्ति की आलोचना कर सकते हैं तथा उसकी भूलों को प्रकाश में ला सकते हैं, किन्तु आलोचना करने या गलती पकड़ने से क्या वह व्यक्ति आपसे सहमत हो सकता है ? 'तुम बहुत फूहड़ हो, कितनी गन्दी पड़ी है आलमारी और फाइलों का यह हाल है ? वास्तव में तुम क्लर्क के योग्य नहीं हो ।' यह हैं कुछ नपे-तुले शब्द जो एक अधिकारी अपने क्लर्क अथवा सेक्रेटरी से कहता है । यह वाक्य किसी भौति एक छुरी से कम नहीं हैं । सीधे-सीधे श्रोता के आत्माभिमान पर चोट करता है । उसके अहं भाव निर्णय-बुद्धि तथा चतुरता पर प्रहार करता है । क्या इससे वह अपना मस्तिष्क बदल देगा ? कदापि नहीं प्लेटो और कान्ट के महान तर्क शास्त्र का आश्रय लेकर भी उससे बहस की जाय, तो भी व्यर्थ होगा क्योंकि आलोचना के इस वाक्य ने उसकी भावनाओं को ठेस पहुँचाई है ।

दूसरों के दोष देखना और आलोचना करना एक दो धार वाली तलवार है, जो आलोचक एवं आलोच्य दोनों पर चोट करती है । शत्रुओं की संख्या में वृद्धि करने का इससे सरल मार्ग और कौन-सा हो सकता है ? एक विद्वान का अनुभव है कि "मैं जब तक अपनी पत्नी के दोष ही देखता रहा, तब तक मेरा गृहस्थ जीवन कदापि शान्तिमय नहीं रहा ।" इस प्रकार की प्रवृत्ति उत्पन्न होने पर सामने वाले व्यक्ति के दोष ही नजर पड़ते हैं, गुण नहीं । गुण यदि उसमें हों भी तो इस भौति छिप जाते हैं जैसे तिनके की ओट पहाड़ छिप जाता है । पाश्चात्य सुप्रसिद्ध विचारक बेकन के अनुसार-पर छिद्रान्वेषण करना महामानव रोग है । इससे मुक्त हो जाना चाहिए । मैथ्यू आर्नल्ड ने कहा था कि 'दूसरों के दोष देखना-भगवान के प्रति कृतघ्न होना है ।'

उदारता और दूरदर्शिता)

(९

दीपक लेकर दूँढ़ने पर भी सम्भवतः कोई भी व्यक्ति ऐसा प्राप्त नहीं हो सकता जो सर्वांगपूर्ण हो, जिसमें कोई कमी न हो । ऐसा व्यक्ति अभी तक उत्पन्न ही नहीं हुआ वह तो भविष्य में कभी होना है । तब तक किसी को गलत बताना, काट-छाँट करना कहाँ तक उचित है ? डाक्टर जोन्सन कहा करते थे “श्रीमान ! स्वयं परमात्मा भी, आदमी के अन्तिम दिन के पूर्व उसके सम्बन्ध में कोई निर्णय नहीं देता । फिर हम और आप ही किसी को गलत कैसे कह दें ?” हमारे हृदय में भी वही भाव होने चाहिए कि अपने परिचितों, प्रियजनों, मित्रों तथा अन्य लोगों की नग्नता और बुराईयों को व्यर्थ में ही न देखते फिरे । गोस्वामी तुलसीदास के शब्दों में हमारा स्वभाव कपास के समान निर्मल होना चाहिए—

साधु चरित शुभ सरिस कपास ।

सरस विसद गुनमय फल जासु ॥

जो सहि दुख पर छिद्र दुरावा ।

बन्दनीय जेहि जग जसु पावा ॥

स्वयं कष्ट सहन कर ले किन्तु दूसरों के दोष छिपावे यह सज्जनों का गुण माना गया है । मुस्लिम धर्म ग्रन्थ की एक कथा है कि हजरत नूह एक दिन शराब पीकर उन्मत्त हो गये । उनके वस्त्र अस्त-व्यस्त हो गये और अन्ततः वे नगे हो गये । उनके पुत्र शाम और जैपेथ उल्टे पैरों उन तक गये और उन्हें एक कपड़े से ढँक दिया । उन्होंने अपने प्रिय पिता का नंगापन नहीं देखा । हमारे हृदय में भी यही भाव होना चाहिए कि अपने प्रियजनों की नग्नता अर्थात् उनकी बुराईयों व्यर्थ में ही न देखते फिरा करें ।

कष्ट सह कर भी दूसरों के दोष छिपाने और उनकी आलोचना न करने का महत्व बहुत पहले ही जान लिया गया था । ईसा मसीह से भी २२०० वर्ष पूर्व मिश्र के प्राचीन राजा अखुई ने कहा था—‘दूसरों की भूल मत पकड़ और यदि नजर पड़ ही जाय तो कह मत ।’ क्राइस्ट ने भी यही कहा था कि ‘यदि तू चाहता है कि तेरे दोषों पर विचार न किया जाय, तो तू भी दूसरों के दोषों पर विचार न कर ।’

अधिकतर व्यक्ति शिकायत करते हैं कि अमुक मित्र ऐसा है, अमुक संबंधी ऐसा है, उनकी यह कमी है आदि-आदि । पर उस व्यक्ति के उन गुणों पर विचार ही नहीं करते जो कि अन्य व्यक्तियों में उपलब्ध

नहीं हैं और जिनके कारण वह उन अनेक उलझनों से बचा हुआ है, जिनमें अन्य व्यक्ति परेशान हैं—

पर दोष-दर्शन के पाप से मुक्ति पाने के लिए, गुण-चिन्तन का अभ्यास डालना चाहिए । प्रतिपक्षी के गुणों का विचार करना चाहिए । चीनी कवि यू-उन-चान की कविता की कुछ पंक्तियों का अनुवाद हमारे इस कथन का समर्थक हैं—

‘हे प्रभु ! मुझे शत्रु नहीं-मित्र चाहिए

तदर्थ मुझे कुछ ऐसी शक्ति दे ।

कि मैं किसी की आलोचना न करूँ-गुणा गान करूँ ।”

बैजामिन फ्रेंकलिन अपनी युवावस्था में बहुत नटखट थे । दूसरों की आलोचना करना, खिल्ली उड़ाना उनकी आदत बन चुकी थी । क्या पादरी, क्या राजनीतिज्ञ सभी उनके माने हुए शत्रु बन चुके थे । बाद में इस व्यक्ति ने अपनी भूल सँभाली और अन्त में जब वह उन्नति करते-करते अमेरिकन राजदूत होकर फ्रांस में भेजे गये तो उनसे पूछा—‘आपने अपने शत्रुओं की संख्या कम करके मित्र कहीं से बना लिए ?’ उन्होंने उत्तर दिया—‘अब मैं किसी की आलोचना नहीं करता और न किसी के दोष उभार कर रखता हूँ । हौं-अलवत्ता-किसी का गुण मेरी दृष्टि में आ जाता है तो उसे अवश्य प्रकट कर देता हूँ । यही मेरी सफलता का रहस्य है ।”

विचारों में भी उदारता रखिए

उदारता का संबंध केवल भौतिक पदार्थों तक ही सीमित नहीं है वरन् विचारों की उदारता का उससे कहीं अधिक है । संकीर्ण विचारों का मनुष्य यदि उदारता का व्यवहार करेगा भी तो उसके द्वारा बहुत थोड़े व्यक्ति लाभ उठा सकते हैं । ऐसा व्यक्ति परिवार, जाति, धर्म, देश आदि अनेकों सीमाओं से घिरा रहता है, जिनके कारण उसकी उदारता का झोत थोड़ी दूर जाकर सूख जाता है ।

अनेक व्यक्तियों की उदारता तो अपने परिवार के लोगों या रिश्तेदारों तक ही सीमित रहती है । वे अपने पास और दूर के असहाय सम्बन्धियों, उनके बाल-बच्चों की सहायता करना अपने लिए आवश्यक समझते हैं । इसका एक कारण यह भी होता है कि अगर उनके उदारता और दूरदर्शिता)

समर्थशाली होते हुए उनके सम्बन्धी बहुत बुरी हालत में फिरते नजर आवें, जगह-जगह सहायता को हाथ फैलाते रहें अथवा किसी प्रकार के छोटे काम करके जीवन निर्वाह करें तो इसमें उनका भी अपयश होता है । अन्य लोग चाहे जब उनको ताना दे बैठते हैं कि 'तुम्हारे रिश्तेदार तो गली-गली मारे-मारे फिरते हैं और तुम यहाँ लाटसाहबी दिखाते हो ।' पीठ पीछ तो ऐसे व्यक्तियों की आमतौर पर निन्दा होती ही है । इसलिए ऐसे लोगों की उदारता बहुत कुछ अपने स्वार्थ के कारण ही होती है और उसका समाज पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता ।

कुछ लोग अपनी जाति वालों की सहायता करना ही श्रेष्ठ कर्म समझते हैं । कुछ समय पहले यह मनोवृत्ति विशेष रूप से उत्पन्न हुई थी और इसके फलस्वरूप अग्रवाल, खण्डेलवाल, बाहरसेनी, कान्यकुब्ज, सरयूपारीण, गौड़, सनाढ्य, खत्री, क्षत्री, राजपूत, कायस्थ, कुरमी, तेली, जायसवाल, भुर्जी वैश्य, कुशावाहा, जाटव आदि सैकड़ों जातियों की तरफ से पृथक-पृथक शिष्टा-संस्थाओं, मन्दिरों, पुस्तकालयों, धर्मशालाओं आदि की स्थापना की गई थी । यह प्रवृत्ति साधारण दृष्टि से बुरी नहीं कही जा सकती, क्योंकि एक-एक समुदाय की उन्नति होने से उसका प्रभाव समस्त समाज पर पड़ता ही है । पर जो लोग उदारता की सीमा अपनी जाति तक ही मान लेते हैं उनका दृष्टिकोण प्रायः सीमित ही बना रहता है और राष्ट्रीय विकास के कार्यों में वे कभी समुचित भाग नहीं ले पाते । अनेक व्यक्ति तो ऐसे कार्य केवल किसी अन्य जाति की प्रतियोगिता के भाव से ही करते हैं और जब वैसी कोई परिस्थिति नहीं होती तो उनकी उद्योगशीलता का भी अन्त हो जाता है ।

धार्मिक अनुदारता के दुष्परिणाम

यद्यपि धर्म का मुख्य गुण मनुष्य में उदारता और परोपकार की भावना को उत्पन्न करना ही माना गया है और हमारे धर्म में 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का सिद्धान्त समस्त शुभ कर्मों का सार तत्त्व बतलाया गया है, तो भी संसार की गति इस दृष्टि से उल्टी ही प्रतीत होती है । पिछले कई हजार वर्षों के इतिहास में धर्म के नाम पर जितने लड़ाई-झगड़े और रक्त रंजित युद्ध हुए, करोड़ों मनुष्यों पर अमानुषिक अत्याचार किये गये हैं, उसकी कल्पना करने से भी हृदय काँप जाता है । भारतवर्ष में वैदिक

और बौद्ध धर्म वालों, पीराणिक लोगों और जैन धर्म वालों, शैवों और वैष्णवों के लड़ाई-झगड़े सैकड़ों वर्ष तक चलते रहे हैं । उनमें लाखों ही व्यक्ति मारे गये और इससे कहीं अधिक संख्या में मनुष्यों को दुर्दशाग्रस्त होकर मारा-मारा फिरना पड़ा । अब से साठ-सत्तर वर्ष पहले भी सनातन धर्मियों और आर्य समाजियों में काफी कलह और मारपीट के दृश्य देखे गये थे । जब एक ही धर्म और देश के व्यक्तियों में थोड़े से सिद्धान्तों के अन्तर के कारण इस प्रकार के पाशविकता के भाव उत्पन्न हो सकते हैं तब विदेशी और सर्वथा भिन्न मजहब वालों के सम्बन्ध में जो कुछ न हो जाय सो थोड़ा है । मुसलमान और हिन्दुओं की प्राचीनकाल से आक्रमणकारी युद्धों की बात तो छोड़ दीजिए, अभी पिछले कुछ वर्षों में हिन्दू-मुसलमानों में जैसे भयंकर उपद्रव और पारस्परिक निन्दा, घृणा और द्वेष की घटनायें हो चुकी हैं, वे 'धर्म' के नाम पर किये जाने वाले पाप कर्मों के ज्वलंत उदाहरण हैं । उनसे स्पष्ट प्रकट होता है कि धार्मिक उदारता के अभाव से भले और श्रेष्ठ समझे जाने वाले मनुष्य भी अपनी मनुष्यता को खोकर किस प्रकार हिंसक वन्य जन्तुओं के सदृश्य कार्य करने लगते हैं ।

हम स्वीकार करते हैं कि भारतवर्ष धर्म प्रधान देश है किन्तु हमारा यह कथन कि भारतवर्ष में दूसरे देशों की अपेक्षा सदा ही धर्म पर अधिक जोर दिया गया है, विदेशियों को एक दम्भपूर्ण उक्ति सी प्रतीत हो सकती है । हम मानते हैं कि दूसरे देशों में किसी कारण से धर्म पर उतना जोर आज नहीं दिया जाता जितना कि भारतवर्ष में दिया जा रहा है किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता कि अन्य देशों की प्रजा भारतवर्ष से कम धार्मिक है । सच तो यह है कि आज भी ईसाई देश में जो 'मिशनरी स्पिरिट' पाई जाती है वह अन्य देशों या धर्मावलम्बियों में नहीं पाई जाती । इतिहास के विद्यार्थी जानते हैं कि यूरोप में एक ऐसा युग था जब कि सहस्रों लोगों ने अग्नि में जीते जी जलाया जाना प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया किन्तु कैथलिक से प्रोटेस्टेंट या प्रोटेस्टेंट से कैथलिक होना स्वीकार नहीं किया । यद्यपि इन प्राण त्यागी महापुरुषों के सामने स्वधर्म को छोड़कर परधर्म स्वीकार करने का सवाल था किन्तु इनके स्वधर्म और परधर्म में वैसा महदन्तर नहीं था जैसा कि उदारता और दूरदर्शिता)

उन धर्मों के बीच में पाया जाता है जिनका कि जन्म भिन्न-भिन्न परिस्थितियों, देशकाल या कारणों से होता है । इनमें वैसा ही अन्तर है जैसा कि शैवों और वैष्णवों में, या शिया और सुन्नियों में है । इतिहास से प्रकट है कि रोमन कैथलिक या प्रोटेस्टेंटों ने, एक ही धर्म के अनुयायी होते हुए भी अपने-अपने मत के लिए उत्साहपूर्वक प्राण त्याग कर जो धर्म-परायणता प्रकट की वह अन्य देशों में सामूहिक रूप में शायद ही कभी देखने में आई हो । अतएव यह कहना कि भारतवासी अन्य देशवासियों से अधिक धर्म प्राण हैं एक गवोक्ति सी प्रतीत होती है । ऐसी गवोक्तियाँ ही साम्प्रदायिक वैमनस्य और अन्तर्राष्ट्रीय मनोमालिन्य पैदा करती हैं ।

प्रत्येक देश या धर्म का व्यक्ति अपने देश या धर्म की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करने के लिए स्वतंत्र है, पर जिस वक्त वह अपने देश-प्रेम या धर्म-प्रेम से उन्मत्त होकर अपने देश या धर्म को दूसरे देश या धर्म से अपेक्षाकृत श्रेष्ठ कहने में गर्व का अनुभव करने लगता है, वहीं वह दूसरों को मानो चुनौती देता है और अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिद्वन्द्विताओं, युद्ध या साम्प्रदायिक संघर्ष का बीज बोता है । अपने देश, धर्म, जाति या कुल को दूसरों से मिलान कर अपेक्षाकृत श्रेष्ठ बताने की मदोन्मत्त भावना में ही अनेकों बुराइयों की जड़ छुपी हुई है । हमें अपने देश, धर्म, गुरु और माता-पिता को श्रेष्ठ समझ कर उनमें अपूर्व श्रद्धा रखनी चाहिए किन्तु हमारा यह दावा करना कि हमारे माता-पिता ही दुनियाँ के सब लोगों से श्रेष्ठ हैं और हमारा हिन्दू धर्म सभी धर्मों से अच्छा है क्या हमारा अन्य लोगों के साथ संघर्ष नहीं करावेगा ? हमारी तो ऐसी कुछ आदत पड़ी है कि जब तक हम किसी चीज को सबसे अच्छी न कह सकें अथवा जब तक हम अपनी ही वस्तु को सबसे अच्छी न कह लें तब तक हमारा जी नहीं भरता और न उस वस्तु के प्रति हमारे हृदय में पूर्ण श्रद्धा ही उत्पन्न होती है । शायद इसी कारण उस धर्म के प्रति जिसे कि हम सबसे अच्छा नहीं समझते अथवा जिसे एक दम अपने धर्म से अपेक्षाकृत हीन समझते हैं समुचित श्रद्धा नहीं रखना चाहते और न उसके प्रति दूसरों की पूर्ण श्रद्धा को ही सहन कर सकते हैं । शायद इसी कारण हम दूसरों को यवन या मलेच्छ कहते हैं ।

हमारा आशय यह नहीं है कि हमारे भाई अपने धर्म में हार्दिक श्रद्धा न रखें या पूर्ण उत्साह के साथ उसका गुणगान न करें या उसका प्रचार करने में किसी प्रकार की शिथिलता दिखलावें । पर ये सब काम हम दूसरे धर्म वालों को हीन समझे और उनकी निन्दा किए बिना भी कर सकते हैं । इतना ही नहीं हमारा तो विश्वास है कि जो व्यक्ति धर्म के वास्तविक मर्म को समझता होगा वह संसार के किसी भी छोटे या बड़े धर्म अथवा मजहब की बुराई न करेगा । इस संबंध में एक अन्य देशीय धर्म-ग्रन्थ में एक बड़ा अच्छा दृष्टांत दिया गया है—

अरब जाति के प्रसिद्ध धर्म गुरु हजरत इब्राहीम का यह नियम था कि बिना किसी अतिथि को भोजन कराये स्वयं भोजन न करते थे । एक दिन वर्षा ऋतु में वर्षा की झड़ी की अधिकता से एक भी अतिथि उनके घर नहीं आया और वे सारे दिन भूखे रहे । अंत में संध्या के समय अतिथि को खोजकर लाने के लिए अपने नौकरों को जगह-जगह भेजा और स्वयं भी इधर-उधर घूमने लगे । उन्होंने देखा कि सामने एक अत्यंत वृद्ध पुरुष जिसकी दाढ़ी-मूँछ के बाल बिल्कुल सफेद थे वृष्टि के कारण कौपता हुआ खड़ा है । वे उसके पास जाकर कहने लगे—‘महाशय ! आप कृपा करके आज मेरे घर आतिथ्य ग्रहण करें ।’ वृद्ध प्रसन्नतापूर्वक उनका निमंत्रण स्वीकार कर उनके घर गया । नौकरों ने बड़े आदर से उसे बैठने को आसन दिया । जब वह हाथ-पैंव धोकर आसन पर बैठा तब वे उसके आगे भोजन सामग्री परोसने लगे । हजरत इब्राहीम भी उसके सामने आ खड़े हुए । जब सब सामग्री परोसी जा चुकी तो वह वृद्ध भोजन करने लगा । उसे ईश्वर को बिना धन्यवाद दिये, बिना ईश्वर का नाम स्मरण किए भोजन करते देखकर इब्राहीम को बहुत बुरा लगा और वे कहने लगे—‘तुम्हारा यह कैसा आचरण है । जिनकी कृपा से तुमको यह मधुर अन्न खाने को मिल रहा है उन्हें बिना धन्यवाद दिये ही तुम खाने लगे । तुम में वृद्ध की-सी समझ नहीं दीख पड़ती ।

इसके उत्तर में वृद्ध ने कहा—‘मैं प्राचीन मूर्ति पूजक सम्प्रदाय का हूँ ।’

उसका ऐसा उत्तर सुन कर इब्राहीम का क्रोध भड़क उठा और उन्होंने वृद्ध को घर से निकाल दिया । तब इब्राहीम के हृदय में देववाणी हुई कि ‘हे इब्राहीम ! मैंने जिसको यत्न पूर्वक अन्न देकर इतनी उदारता और दूरदर्शिता)

बड़ी उम्र तक बचा रखा, उसे तुम घड़ी भर भी अपने यहाँ न ठहरा सके और तुमने उसके साथ इतनी घृणा की । वह मूर्तिपूजक था या नास्तिक था, पर तुमने अपने दान के नियम को क्यों भंग किया ?'

इस दृष्टांत से मालूम होता है कि धार्मिक अनुदारता कितनी हानिकारक बात है, जो एक महापुरुष कहे जाने वाले को भी मति-भ्रम में डाल देती है । अगर हम अपने संप्रदाय अथवा मजहब के अनुयायी के साथ ही मनुष्योचित व्यवहार कर सकते हैं और उससे बाहर के सब लोगों को नीच या पापी मान कर घृणा की दृष्टि से देखते हैं, उनके साथ उदारता का व्यवहार करना आवश्यक नहीं समझते, तो वास्तव में अभी हम धार्मिकता या आध्यात्मिकता से बहुत दूर हैं । हम यह नहीं कहते कि आप ईसाई, यहूदी, मुसलमानी, पारसी, बौद्ध आदि अन्य धर्मों को सत्य मानिए या अपने धर्म के बराबर का भी समझिये । हिन्दू धर्म को आध्यात्मिकता की दृष्टि से बहुत से लोगों ने अन्य धर्मों से बढ़ा-चढ़ा स्वीकार किया है । पर यदि हम इस आधार पर दूसरे लोगों को अधर्मी या पापी कहते हैं तो हम भी एक बहुत बड़ी गलती कर रहे हैं । भिन्न-भिन्न धर्म अलग-अलग देशों के निवासियों की स्थिति और आवश्यकता के अनुसार रचे गये हैं । सब लोग एक दम धर्म के सब से बड़े दर्जे के नियमों का पालन नहीं कर सकते । जिन लोगों के आध्यात्मिक संस्कार अभी अधिक परिष्कृत नहीं हुए हैं उनको उनकी योग्यतानुसार ही धार्मिक नियमों का पालन करना बताया जाता है, पर इस कारण उनको अपने से प्रथक समझना और उदारता के व्यवहार के अयोग्य मानना कभी उचित नहीं कहा जा सकता ।

व्यवहार में उदारता

उदारता का सबसे अधिक काम व्यवहार में पड़ता है । हमको प्रतिदिन जान, अनजान, मित्र, शत्रु, उदासीन, अमीर, गरीब, समान स्थिति वाले, अफसर, नौकर आदि के साथ व्यवहार करने की आवश्यकता पड़ती है । आजकल के बहुसंख्यक चतुर या दुनियादार लोगों का तो यह तरीका होता है कि जो अपने से बड़ा या शक्तिशाली है उसके साथ बड़ी शिष्टता, सभ्यता और उदारता का भाव प्रकट करेंगे और छोटे, निर्बल, अशिक्षित व्यक्तियों के साथ कठोरता, रीब-दाव और संकीर्णता का

व्यवहार करेंगे । यह बहुत स्वार्थपूर्ण दृष्टिकोण है । इसमें उच्चता का कोई चिन्ह नहीं । जो आप से शक्तिशाली या ऊँचे दर्जे के हैं उनके प्रति उदारता का कार्य एक प्रकार का प्रदर्शन मात्र ही है । इसका एक मात्र उद्देश्य यही हो सकता है कि वे आप पर प्रसन्न बने रहें और आवश्यकता पड़ने पर किसी प्रकार की सुविधा प्रदान कर सकें । उदारता की वास्तविक पहचान तो छोटे, आश्रित और असमर्थ लोगों के प्रति किये गये व्यवहार में ही होती है । अगर उनसे आप मनुष्यता का, सहृदयता का, शिष्टता का व्यवहार करते हैं तो आप निस्संदेह उदार माने जायेंगे । महान पुरुष वे ही होते हैं जो आवश्यकता पड़ने पर छोटे-छोटे व्यक्ति के साथ सदयता का व्यवहार करने में संकोच नहीं करते ।

स्वर्गीय महादेव गोविन्द रानाडे अपने समय के एक प्रसिद्ध महापुरुष थे, आपने बम्बई प्रान्त में समाज सुधार के लिए बड़ा काम किया था और अनेक दुर्दशाग्रस्त व्यक्तियों को सहायता देकर उद्धार किया था । वे हाईकोर्ट के जज थे और समाज में एक बड़े नेता की दृष्टि से देखे जाते थे । एक दिन तेज गर्मी के दिनों में वे सायंकाल के समय गाड़ी में बैठकर हवाखोरी को जा रहे थे । रास्ते के किनारे उन्होंने एक बहुत गरीब बुढ़िया को बैठे देखा, जो एक लकड़ी का बोझ उठा कर सर पर रखना चाहती थी, पर उतनी शक्ति न होने के कारण निरुपाय खड़ी थी । उसने कितने ही रास्ता चलने वालों से प्रार्थना की कि वे उस बोझ को उठाने में हाथ लगा दें, पर कोई उसकी दीन दशा पर ध्यान न दे रहा था । उस पर दृष्टि पड़ते ही रानाडे उसकी परिस्थिति को समझ गये । उन्होंने गाड़ी रुकवाई और उतर कर बुढ़िया के पास पहुँचे बुढ़िया किसी बड़े सरकारी अफसर जैसे व्यक्ति को अपने सामने खड़ा देखकर डर गई, पर रानाडे ने सान्त्वना देकर उसके लकड़ी के गट्ठे को स्वयं अपने हाथों से उठाकर उसके सर पर रख दिया । बुढ़िया आशीष देती हुई अपने घर चली गयी ।

एक ऐसी ही घटना बंगाल के बहुत बड़े जमींदार कासिम बाजार के महाराज मणीन्द्रचन्द्र नन्दी के विषय में कही जाती है । एक दिन कलकत्ता जाने वाली गाड़ी जब गुस्करा स्टेशन पर ठहरी तो उसमें से अनेक यात्री उतरे । एक वृद्धा भी वहाँ उतर पड़ी । उसके पास एक गट्ठा था जो वजन में भारी था । उसने उसे बाहर लाने की बहुत कोशिश उदारता और दूरदर्शिता)

की पर न ला सकी । इधर गाड़ी चलने का समय हो गया और झुण्ड के झुण्ड यात्री गाड़ी में चढ़ने लगे । यह देखकर बुढ़िया बड़ी घबड़ाई और अनेक यात्रियों से अपना गट्ठर बाहर निकाल देने की विनती करने लगी । पर उस भीड़-भाड़ और जल्दबाजी में किसी ने उसकी ओर ध्यान न दिया । सब अपने-अपने काम में व्यस्त थे और बार-बार कहने पर भी कोई बुढ़िया की बात नहीं सुन रहा था । हताश होकर बुढ़िया रोने लगी, पर वहाँ एक भी व्यक्ति ऐसा न निकला जो उस पर दया दिखाता । संयोगवश उसके रोने-कलपने की आवाज दूर से महाराज मणीन्द्र चन्द्र ने सुनी, जो उसी ट्रेन से फर्स्ट क्लास में बैठे कलकत्ता जा रहे थे । वे अपनी गाड़ी से उतर कर दौड़ कर तीसरे दर्जे की गाड़ी में आये जहाँ वह बुढ़िया थी और जल्दी से उसका गट्ठर उतार कर उसके सिर पर रख दिया । उस समय गाड़ी छूटने ही वाली थी, गाड़ी छूटने की घण्टी पहले ही बज चुकी थी, बुढ़िया के कृतज्ञता प्रकट करने के पहिले ही वे दौड़कर फिर अपने फर्स्ट क्लास के डिब्बे में जा बैठे । बुढ़िया आँखों से कृतज्ञता के आँसू बहाती और महाराज को अनेक आशीर्वाद देती हुई चली गई ।

यद्यपि ये बहुत छोटी घटनायें हैं, पर इनसे हमको उदारता के व्यवहार की शिक्षा मिलती है । किसी आपत्ति ग्रस्त दीन व्यक्ति की सहायता कर देने से बड़े आदमी की कोई हानि नहीं होती, पर इससे समाज के व्यक्तियों को परस्पर में सद्व्यवहार और उदारता का बर्ताव करने की प्रेरणा मिलती है । ऐसी भावना का प्रसार होने से मनुष्यों की अध्यात्मिक और मानसिक शक्तियाँ उन्नत होती हैं और वे परस्पर में मनुष्यता का व्यवहार करके प्रगति के मार्ग पर अग्रसर होते हैं ।

आश्रितों के प्रति उदारता

जैसा हम ऊपर लिख चुके हैं कि अपने से बड़े और समान स्थिति वालों के साथ तो लोग प्रायः सज्जनता का, उदारता का व्यवहार करना आवश्यक समझते हैं, पर छोटे लोगों के साथ, अपने नौकरों और सेवकों के साथ वे सज्जनता का व्यवहार करना ठीक नहीं समझते । अनेक लोगों का तो यह खयाल होता है नौकरों के साथ ऐसा नरमी का या सौजन्य पूर्ण व्यवहार करने से वे स्वेच्छाचारी और निरंकुश हो जाते हैं ।

५८)

(उदारता और दूरदर्शिता

जिन व्यक्तियों को हमने रुपया देकर अपने आराम के लिए नीकर रखा है, उनके साथ सौजन्य की क्या आवश्यकता ? अगर वे अपना काम ठीक ढंग से और मेहनत से न करेंगे अथवा आज्ञापालन में ढील-ढाल दिखलायेंगे तो अवश्य उनको दण्ड दिया जायगा । हमने बहुत से लोगों को देखा है कि नौकरों से जब कभी बात करेंगे तो त्योंरी चढ़ाकर और कड़े शब्दों में ही बोलेंगे । वे लोग नौकरों से मीठी बोली में बोलना अपनी शान के खिलाफ समझते हैं । कितने ही अहंकारी, रईस, अमीर नामधारी भले नौकरों को भी डाँटते-डपटते ही रहते हैं और अनेक तो नौकरों को पीट देना भी अपना अधिकार समझते हैं, पर क्या इस प्रकार के व्यवहार से वास्तव में कोई लाभ होता है ? इसका परिणाम सदैव बुरा ही निकलता है । ऐसे कठोर और दुष्ट प्रकृति के मालिक से नौकर सदैव असंतुष्ट रहते हैं, उसके विरुद्ध आपस में षड्यंत्र रचते रहते हैं और जब कभी अवसर मिलता है तो उसे हानि भी पहुँचा देते हैं ।

बंगाल के एक विद्वान और नेता श्रीभूदेव मुखोपाध्याय अपने नौकरों के साथ बड़ी शिष्टता और दया का व्यवहार करते थे । उनकी पत्नी ने एक बार कहा था- 'मैं समझती हूँ कि नौकर लोग घर के लड़कों की अपेक्षा भी अधिक दया और उदारता के पात्र होते हैं । लड़के तो बराबर हमारे पास रहते हैं और जब जो चाहते हैं पा जाते हैं । हम लोग बराबर उन्हें सुखी रखने की चेष्टा करते हैं । वे जब बीमार होते हैं तो हम रात-दिन उन्हीं के पास बैठे रहते हैं । पर जब नौकर बीमार होकर कष्ट के मारे 'हाय-हाय' चिल्लाता है तब उसकी रक्षार्थ उसके माँ-बाप उसके पास थोड़े ही आ सकते हैं । उस समय हम लोगों को भी उनके साथ माँ-बाप का-सा व्यवहार करना चाहिए । नौकर पर पूरा विश्वास करके तुम बहुत करते हो घर की ताली उसके सुपुर्द कर देते हो, किन्तु वह तो तुम्हारी दया के भरोसे अपने प्राण तक तुम्हें सौंप देता है ।

दूरदर्शिता और उदारता

उदारता के गुण का दूरदर्शिता से एक प्रकार का विशेष सम्बन्ध है । जब हम अनायास किसी अनजान व्यक्ति के साथ भलाई करते हैं, तो इसमें हमको या दूसरों को कोई निकटवर्ती लाभ या उपयोग नहीं जान पड़ता । बहुत से मनुष्यों को तो इस प्रकार दूसरों की सेवा या सहायता उदारता और दूरदर्शिता)

के कार्य व्यर्थ की बेगार की तरह ही जान पड़ते हैं, पर दूरदर्शी मनुष्य भली प्रकार जानता है कि इस प्रकार जो कार्य शुद्ध भलाई की भावना से किया जायगा, उसका शुभ परिणाम आगे चलकर किसी न किसी रूप में हमको अवश्य मिलेगा । जिस प्रकार खेती करते समय किसान उत्तम अनाज के दानों को मिट्टी में मिला देता है और उस समय प्रत्यक्ष रूप से यही दिखलाई पड़ता है कि वे अनाज के दाने व्यर्थ में नष्ट हो गये, पर कुछ समय बाद वे ही दाने अनेक गुने होकर किसान को प्राप्त होते हैं । यही बात निष्काम भाव से की गई भलाई की समझना चाहिए । उसका शुभ फल किसी न किसी रूप में हमको मिलना अनिवार्य होता है ।

परिस्थितियों को दोष देना व्यर्थ है

बहुत से लोग परिस्थितियों की प्रतिकूलता का बहाना करके दूसरों की सेवा और सहायता के कामों से बचना चाहते हैं । हम यह नहीं कहते कि मनुष्य के मार्ग में कठिनाइयाँ नहीं आतीं, पर जिस व्यक्ति का स्वभाव उदारता और परोपकार का होगा, वह हर तरह की परिस्थिति में उसके लिए कोई न कोई मार्ग निकाल ही लेगा । यह तो सभी जानते हैं कि उदारता, सहायता, दान आदि की श्रेष्ठता का निर्णय कम या अधिक परिमाण से नहीं होता वरन् उसकी भावना से होता है । एक करोड़पति के लाख रुपये के दान से एक गरीब मजदूर का दो आने का दान इसी दृष्टि से अधिक त्याग और महत्व का माना जाता है ।

मनुष्य को हर समय अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है । जो व्यक्ति सफलतापूर्वक इन समस्याओं को हल कर लेता है, उसका जीवन सुखी रहता है, किन्तु जो सामने की समस्याओं से भागने का प्रयत्न करता है, वह सदा दुःखी रहता है । समस्याओं का हल अपने आप को समझने, अपनी शक्ति पहचानने और आत्म-संयम करने का साधन मात्र है । जिस मनुष्य में अपने विचारों पर नियंत्रण रखने और उन्हें सुव्यवस्थित करने की जितनी शक्ति होती है, वह अपनी परिस्थिति जन्म समस्याओं को हल करने में उतना ही समर्थ होता है । अपने विचारों को नियंत्रित न रखने से परिस्थितियाँ प्रतिकूल हो जाती हैं तथा साधारण समस्याएँ भी भयंकर दिखाई देने लगती हैं ।

जब मनुष्य में निकम्मापन आता है तो वह अपनी अकर्मण्यता का दोष वातावरण के सिर मढ़ने लगता है । इस प्रकार मिथ्या संतोष प्राप्त

करता है, पर उससे उसका मानसिक क्लेश नष्ट नहीं होता, अपितु वह और भी बढ़ जाता है । जो लोग जीवन में बड़े ऊँचे आदर्श रखते हैं, वे अपने आदर्श जीवन के अनुसार आचरण न कर सकने के लिए प्रायः अपनी परिस्थितियों को ही कोसा करते हैं । इस प्रकार का दोषारोपण मनुष्य की दूसरों की सेवा न करने की इच्छा का ही परिणाम है । जब मनुष्य में स्वार्थ परायणता आती है तो उसके मन में भय और चिन्ताएँ आने लगती हैं । ये भय और चिन्ताएँ मानसिक शक्ति को नष्ट कर देती हैं । इस प्रकार मनुष्य में निराशा भर जाती है । वह किसी भी काम सफलता की संभावना नहीं देखता । वह अपने को शत्रुओं से घिरा पाता है । वह दूसरों की हृदय से सेवा करना नहीं चाहता, पर वह इस बात को स्वीकार न कर वातावरण में अपनी अकर्मण्यता का कारण खोजता है । पैसे की कमी, मित्रों की कमी, समाज की पूर्वास्था आदि बातें शुभ काम करने में रुकावट डालने लगती हैं । कभी-कभी कल्पित अथवा वास्तविक रोग काम में अड़चनें डालने लगते हैं ।

इस प्रकार के विचार सामान्य नवयुवकों के होते हैं, जो उन्हें निकम्मा बना देते हैं । ऐसे विचारों के कारण मनुष्य अपने आस-पास प्रतिकूल वातावरण पैदा कर लेता है । वह सोचता है कि वातावरण किसी भी प्रकार के विचारों तथा आचरण का कारण होता है । विचार और आचरण वातावरण में उपस्थित परिस्थितियों के परिणाम मात्र होते हैं । जो व्यक्ति अपने कर्तव्य से बचना चाहता है, वह उक्त विचार को दृढ़ता से पकड़ लेता है । मानसिक तथा शारीरिक रोगी वातावरण को ही अपने रोग का कारण ठहराते हैं । मनुष्य को रोग नहीं होता तब भी वह रोग की कल्पना कर लेता है, जिससे वह अपने प्रमाद का कोई बहाना बताकर अपनी कर्तव्य बुद्धि को धोखा दे सके । जिस प्रकार हम दूसरों को धोखा देने की चेष्टा करते हैं, उसी प्रकार हम अपने आप को भी धोखा देते हैं । जब तक धोखा देने की मनोवृत्ति का अन्त नहीं होता, वह अपने आप में भले काम करने की शक्ति नहीं पाता । धोखा देने की मनोवृत्ति से मानसिक शक्ति का उदय न होकर विनाश ही होता है ।

जब मनुष्य आध्यात्मिक रूप से विचार करने लगता है तो वह अपने आचरण और सफलता का कारण अपने विचारों को ही पाता है ।
 उदारता और दूरदर्शिता)

मनुष्य के विचार उसके जीवन से सम्बन्ध रखने वाली सभी वस्तुओं के कारण होते हैं । जैसे हम होते हैं वैसा ही संसार होता है । हम संसार के पदार्थों को अपनी बुद्धि के अनुरूप ही पाते हैं । यह मनोविज्ञान का सामान्य सिद्धान्त है । हमारे सामने रक्खा हुआ पदार्थ भी हमारे संस्कारों, कल्पनाओं और विचारों के अनुसार दिखाई देता है । जिस प्रकार की भावनाएँ हमारे मन में रहती हैं, बाह्य पदार्थ वैसे ही रूप में दिखाई देने लगते हैं ।

किसी व्यक्ति को भले अथवा बुरे मनुष्य उसके विचारों के अनुसार मिला करते हैं । जो व्यक्ति अपने आप से परेशान हैं वह परेशान करने वाले व्यक्तियों से स्वयं को घिरा पाता है । भले विचार वाले व्यक्ति को भले मनुष्य मिलते हैं, बुरे विचार वाले व्यक्ति को बुरे ।

वातावरण में परिवर्तन आध्यात्मिक आकर्षण के कारण भी होता है । जैसे मनुष्य के विचार होते हैं, उन्हीं के अनुसार दूसरे लोग अथवा परिस्थितियाँ उनके समझ आती हैं । कोई भी व्यक्ति हमारे पास इसलिए आता है कि हमारे भीतरी मन में उसके आने की आवश्यकता है । अपने स्वभाव को न जानने के कारण ही मनुष्य दूसरे लोगों के आचरण से परेशान रहता है, अथवा परिस्थितियों की प्रतिकूलताओं की शिकायत करता है । अपना ही स्वभाव प्रतिकूल परिस्थितियों उपस्थित करता है । इस प्रकार की परिस्थितियाँ हमारे आध्यात्मिक विकास के लिए आवश्यक होती हैं । अंग्रेजी में एक कहावत है—समान पंखों के पक्षी एक साथ उड़ते हैं । जो जैसा होता है, उसको वैसा ही व्यक्ति मिल जाता है । हम सदा अपने ही जैसे व्यक्तियों को अज्ञात जगत् में आकर्षित करते हैं और दूर-दूर से हमारे जैसे व्यक्ति संपर्क में आ जाते हैं । सभी व्यक्तियों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर उनके विचार ही ले जाते हैं । विचार के आ जाने पर एक जगह से दूसरी जगह जाने का कारण मिल जाता है । विचार की उत्पत्ति आन्तरिक प्रेरणा से होती है ।

सभी घटनाओं के दो कारण होते हैं—एक भीतरी और दूसरा बाहरी । हम जिन कारणों को घटना का कारण सोचते हैं वे प्रायः उनके बाहरी कारण मात्र होते हैं । ये कारण घटना के उतने महत्वपूर्ण कारण नहीं होते जितने आन्तरिक कारण हैं । आन्तरिक कारणों पर हमारा ध्यान प्रायः नहीं जाता । उसके लिए शान्त विचारों की

आवश्यकता होती है । अपने वैयक्तिक स्वार्थ से ऊपर उठने पर ही मनुष्य को आन्तरिक तथा वास्तविक कारण का पता चलता है । घटना का आन्तरिक कारण सूक्ष्म विचार होता है । जिस मनुष्य को जिस बात का भय होता है उसके जीवन में वह बात घटित हो जाती है, वह चाहे उसके प्रति कितना ही सतर्क क्यों न रहे ? उस घटना को उसका विचार ही घटित करता है । इसी प्रकार सदेह-रहित शुभ विचार भी फलित होता है । हम जिस प्रकार के लोगों को चाहते हैं वे अनायास हमारे प्रति आकर्षित होते हैं । हमारा विचार देश और काल के प्रतिबन्ध को नहीं मानता । विचार की कोई सीमा नहीं है और उसकी गति का कोई माप नहीं । एक क्षण में विचार सारी सृष्टि की परिक्रमा कर सकता है । उसकी शक्ति भी अमोघ है । अतएव जिस व्यक्ति को हम चाहते हैं उसके आन्तरिक मन में अज्ञात प्रेरणा हमारी ओर को ही हो जाती है, पर यहाँ यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि यह चाह ऊपरी चाह न हो, भीतरी मन की चाह हो । भीतरी मन जिन बातों को चाहता है वे ही बातें हमारे जीवन में घटित होती हैं ।

जो मनुष्य समाज की सेवा करना चाहता है उसे सभी प्रकार की परिस्थितियाँ अनुकूल दिखाई देती हैं । प्रतिकूल परिस्थितियाँ भी हमारे अनुकूल हो जाती हैं । जो व्यक्ति परिस्थितियों से नहीं डरता उससे परिस्थितियाँ डरती हैं और उसके अनुकूल हो जाती हैं । समाज की सेवा कोई दूर की वस्तु नहीं है । वह सब जगह हमारे समक्ष रहती है । समाज व्यक्तियों का बना है । समाज के एक भी व्यक्ति को प्रसन्न चित्त करना समाज के अन्य व्यक्तियों के प्रति भारी सेवा है । प्रसन्न चित्त व्यक्ति को देखकर दूसरे लोग भी प्रसन्न होते हैं । रोते हुए व्यक्ति रोते-हुओं की ही संख्या बढ़ाते हैं । वे अपना रोग दूसरे लोगों में भी फैलाते हैं । जो अपने आप सुखी हैं वे दूसरे व्यक्तियों को भी सुखी बनाते हैं । जो अपने आप दुखी हैं वे दूसरों को भी दुखी कर देते हैं । अतएव संसार के एक भी मनुष्य को प्रसन्न बनाना उसकी भारी सेवा है । मन की प्रसन्नता धन की, सम्पत्ति की वृद्धि से नहीं आती वरन् आशावाद की वृद्धि और स्वार्थपरता के त्याग से आती है ।

उदारता और दूरदर्शिता)

(२३

उदारता एक दैवी तत्त्व है

उदारता निस्संदेह एक मानसिक गुण है । भौतिक परिस्थितियों से उसका अधिक सम्बन्ध नहीं । प्रायः देखा जाता है कि लखपति लोग हर एक बात में कंजूसी करते हैं, दूसरों के दुख का कुछ भी प्रभाव उन पर नहीं पड़ता, सदा अपने लाभ पर ही दृष्टि रखते हैं । इसके विपरीत बिल्कुल साधारण स्थिति के और गरीब व्यक्ति समय पड़ने पर फौरन दूसरे की सहायता करने को अग्रसर होते हैं और किसी को कष्ट में फँसा देखकर द्रवित हो जाते हैं । इसका एक कारण यह भी होता है कि गरीब अभावग्रस्त होने के कारण उनको दूसरों के दुख का तुरन्त अनुभव हो जाता है, जबकि धनवान को हर तरह से धन जमा करने के सिवा किसी और बात का अनुभव नहीं होता ।

जो लोग दूसरों की सेवा या उपकार करना नहीं चाहते, वे ही उदारता के कार्यों में तरह-तरह के बहाने ढूँढते हैं । अन्यथा यह एक ऐसा दैवी तत्त्व है जो मनुष्य के व्यक्तित्व को अत्यन्त आकर्षक और अनेक गुणों का केन्द्र बना देता है । उदार व्यक्ति के साथ सदैव बहुसंख्यक व्यक्तियों की शुभकामनाएँ और आशीर्वाद रहते हैं । किसी कारणवश आपत्ति में पड़ जाने पर या निर्धन हो जाने पर भी लोगों की सहानुभूति उसके साथ रहती है और उसके आदर-सम्मान में कमी नहीं आती । इसलिए मनुष्य को चाहिए कि अपने कार्यों, व्यवहार और विचारों द्वारा सदैव दूसरों के साथ उदारता का व्यवहार करें और इस बात का सदैव ध्यान रखें कि उनके द्वारा किसी के लाभ के सिवा किसी प्रकार का शारीरिक या मानसिक कष्ट न पहुँचे ।



मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा (उ. प्र.)